IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 25, Issue 1, Series 10 (January, 2020) 62-66
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

धर्मनिरपेक्षता : सिद्धांत और व्यवहार

रेखा जौरवाल
सह आचार्य , इतिहास विभाग
गौरी देवी राजकीय महिला महाविद्यालय,
अलवर , राजस्थान , 301001

धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा

धर्मनिरपेक्षता जीवन का एक आधुनिक दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण आधुनिक पाश्चात्य जगत के औद्योगिक बाजार–समाजों में उत्पादन, वितरण और खपत के व्यापक सामाजिक संगठनों की पैदाइश था।

प्रारंभ में धर्मनिरपेक्षता के विचार की वकालत कुछ बुद्धिजीवियों द्वारा (निजी रूप से) की गई थी। यूरोप में सामन्तवादी विरोधी विद्रोहों के प्रबल होने के दौरान नए उभरते बुर्जुआ वर्ग (उद्योग व्यापार आदि गतिविधियों में लगे उद्यमी तथा अन्य व्यवसायों में लगा मध्यवर्ग) ने (एक वर्ग के बतौर) इस विचार का समर्थन किया, और इसे आगे बढ़ाया। यह बुर्जुआ वर्ग मानता था कि आधुनिक उद्योग और कृषि अर्थव्यवस्था की भाँति ही, आधुनिक राष्ट्र राज्य की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं सामाजिक संगठनों के पिछड़े सिद्धान्तों से नियंत्रित नहीं की जा सकतीं। पूर्व पूंजीवादी समाज का सांस्कृतिक गढ़ धर्म था, इसलिए धर्म ही बुर्जुआ बुद्धिवादी आलोचना का लक्ष्य बना।

इस तरह वैध विचारधारा के रूप में धर्मनिरपेक्षता की आवश्यकता को नया महत्व मिला। जैसे ही बुर्जआ–वर्ग के हाथ में थोड़ी राजसत्ता आई वैसे ही धर्मनिरपेक्षता को आधुनिक राज्य के संवैधानिक दर्शन का दर्जा मिला, और राज्य की नीति के रूप में संस्थात्मक वैधता प्राप्त हुई। ऐसा इसलिए भी हुआ क्योंकि किसी भी राज्य की उदार और लोकतांत्रिक पहचान के लिए धर्मनिरपेक्षता एक आवश्यक गुण बन गई थी। आधुनिक राज्य निर्माण की उन परिस्थितियों में लोगों की अपनी–अपनी धार्मिक सम्बद्धताओं के बावजूद समाज में उभरते विभिन्न वर्गों और समूहों के बीच पारस्परिक सहिष्णुता की प्रवृत्ति पैदा हुई। यह ऐतिहासिक आवश्यकता ही बाद में राज्य की नीति और प्रशासन के सार्वजनिक और राजनीतिक गुण के रूप में संस्थापित हुई। इस तरह धर्मनिरपेक्षता का संस्थानीकरण हुआ। इससे धार्मिक संघर्ष को टालने की आवश्यकता पैदा हुई। यही वजह थी कि 19वीं शताब्दी के यूरोप के अधिकांश दार्शनिकों ने राज्य द्वारा जनता या उसके किसी भी वर्ग पर किसी भी धर्म के लादे जाने के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किए। राज्य का धर्म (चर्च) से अलगाव आधुनिक राज्य व्यवस्था का एक आधारभूत सिद्धांत बन गया। उदाहरण के लिए, जब अमरीकी संविधान में पहले संशोधन के रूप में यह जोड़ा गया कि 'कांग्रेस किसी भी धर्म की स्थापना के लिए या किसी भी धर्म के स्वतंत्र पालन को रोकने के लिए कोई कानून नहीं बनाएगी' तो यह दृष्टिकोण अमरीका में एक आधारभूत संवैधानिक वैधिक गुण के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

धर्मनिरपेक्षीकरण की यह प्रक्रिया सभ्य समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक आधार को नए ऐतिहासिक परिवर्तनों की वैज्ञानिक भावना के अनुसार सुधारने के लिए भी आवश्यक थी । इसी प्रकार, धर्मनिरपेक्ष राज्य का संगठन, बुर्जुआ राजसत्ता के वैधिक सैद्धांतिक आधार के लिए एक महत्वपूर्ण मापदण्ड बन गया। धर्मनिरपेक्षतावादी विचारधारा की आवश्यकता को धर्म से नहीं, बल्कि नए उभरते वर्ग से ताकत मिली। इसके अलावा, आधुनिकता और आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति सर्वव्यापी थी। विचारधारा और राजनीति के क्षेत्र में इसने लोकतांत्रिक परिवर्तनों को प्रोत्साहित किया। सामन्तवाद विरोधी विद्रोहों से भरे उत्तर – पुनर्जागरण काल के पश्चिम यूरोपीय संदर्भ में आधुनिक होने का अर्थ था धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना। इसमें मानव स्वतंत्रता का विस्तार भी अन्तर्निहित था। इसने एक व्यक्ति और व्यक्ति समूह को संप्रभुता प्रदान की– यानी स्वयं उसे (या उनको) ही उसके (या उनके) भाग्य का स्वामी बना दिया। ऐसा हर क्षेत्र में हुआ, चाहे वह उत्पादन का क्षेत्र हो, सामाजिक परिवर्तन का या राज्यतंत्र अथवा राजनीतिक संस्थाओं का मानव इतिहास और राजनीतिक संस्थाओं के निर्माता के रूप में ईश्वर को नहींश, बल्कि स्वयं जन या जन समुदाय को मान्यता दी गई। इस प्रकार आधुनिकता,सामन्तवाद विरोधी और परम्परा विरोधी दृष्टिकोण का प्रतीक बन गई। धर्मनिरपेक्षता नई वैद्धिकता

का कारगर सैद्धांतिक हथियार बन गई। यह सब इस तरह हुआ कि प्रत्येक व्यक्ति के निजी जीवन में भी धर्म और अन्धविश्वास के बजाय विज्ञान और बुद्धि महत्व मिलना शुरू हो गया।

धर्मनिरपेक्षता का उदय

'धर्मनिरपेक्ष' और 'धर्मनिरपेक्षीकरण'शब्द हमारे यहाँ अंग्रेजी शब्द 'सेक्यूलर' (Secular) और 'सेक्युलराइजेशन (Secularization) के रूपान्तरण हैं। इन अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग यूरोप में तीस वर्ष तक चले युद्ध की समाप्ति पर सन् 1648 में पहली बार हुआ और तभी इनको बौद्धिक विचारधारात्मक लोकप्रियता मिली। इनका प्रयोग चर्च की सम्पति को राजा के नियंत्रण में हस्तांतरित किए जाने के संदर्भ में हुआ। फ्रांस की क्रांति के बाद 2 नवम्बर, 1798 को टैलीरेन्ड (एक वयोवृद्ध फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ) ने फ्रांस की राष्ट्रीय सभा (फ्रेन्च नेशनल असेम्बली) में घोषणा की कि गिरजाघरों से संबंधित सारी वस्तुएँ राष्ट्र के अधिकार में हैं। काफी बाद में, 1851 में जार्ज जेकब होलियोग (George Jacaobe Holybaake) ने 'सेक्यूलरिज्म' (धर्मनिरपेक्षतावाद) शब्द गढ़ा।

धर्मनिरपेक्षतावाद ने राजनीतिक दर्शन का स्वरूप 1850 में ही ग्रहण किया। इसे राजनीतिक और सामाजिक संगठन का एकमात्र तार्किक आधार घोषित किया गया। यूरोप के अधिकांश परिवर्तनवादी बुद्धिजीवियों और सुधारकों ने इसे प्रगति आंदोल दिया। जब 13 अप्रैल, 1853 को राबसपियर (Robespierre) के सम्मान में आयोजित एक सार्वजनिक सभा में लुई ब्लॉक (Louis Blank), नादौ (Nadaud) कुसुली (Kussuli) तथा अन्य उग्र प्रवक्ताओं ने भाग लिया तो धर्मनिरपेक्ष आंदोलन शुरू हो गया। इस सभा में अभिजात, पादरी, राजनीतिज्ञ और सामाजिक कार्यकर्ता भी शामिल थे। राजनीतिक आंदोलन के इसी चरण में होलियोक (Holydoke) ने धर्मनिरपेक्षता की व्याख्या भौतिक साधनों द्वारा मानव कल्याण को बढ़ावा देने वाले और दूसरों की सेवा को जीवन का आदर्श बनाने वाले साधन के रूप में की। साथ ही, होलियोक ने सभ्य समाज के धार्मिक आधार पर ही प्रश्नचिन्ह लगाते हुए कहा :

''ऐसे रूढ़िवादी धर्म से एक गरीब व्यक्ति को क्या लेना–देना है, जो अपनी शुरूआत ही उसे (गरीब व्यक्ति) एक दीन हीन पापी बता कर करता है, और अन्त उसे एक असहाय गुलाम बना कर करता है। एक गरीब व्यक्ति स्वयं को एक हथियारबन्द दुनियां में पाता है, जहां शक्ति ही ईश्वर है और गरीबी बेड़ी है।''

होलियोक के लेखन में धर्मशास्त्र की जो आलोचना की गयी है उस में इसीलिए समाजवादी मानवतावाद का मूल परिवर्तनवादी तत्व पाया जाता है। फिर भी, स्वयं धर्म विरोधी (नास्तिक) होना जरूरी नहीं है। लेकिन चार्ल्स ब्राडलाफ (Charles Bradlaugh) ने, जिसने 1860 के बाद से धर्मनिरपेक्ष आंदोलन को बहुत अधिक प्रभावित किया, जोर देकर कहा कि एक धर्मनिरपेक्षतावादी को कट्टर निरीश्वरवादी (नास्तिक) होना चाहिए। यह दृष्टिकोण उसी के समान था जो बाद के दिनों में बहुत से मार्क्सवादियों, समाजवादियों और साम्यवादियों ने अपनाया।

धर्मनिरपेक्षता का स्वरूप

'धर्मनिरपेक्षता' और 'धर्मनिरपेक्षीकरण'शब्द, यूरोप और उत्तरी अमरीका के सभ्य समाजों में पिछले कई दशकों में जो कुछ होता रहा था, उसके वैचारिक निर्धारण के परिणामस्वरूप गढ़े गए थे। इस तरह ये शब्द, व्यापक और जटिल समाजों की राजनीतिक पुनर्व्यवस्था की विचारधारात्मक या सैद्धांतिक अभिव्यक्ति थे और इन समाजों केऔद्योगीकरण, शहरीकरण तथा बुर्जुआकरण के परिणाम थे। हालांकि धर्मनिरपेक्षता का उदय पश्चिमी उदार समाजों में हुआ था, फिर भी इन समाजों में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया अधूरी और आंशिक रही।

धर्मनिरपेक्ष राज्य और धर्मनिरपेक्ष विचारधारा की आवश्यकता

वैधिक धर्मनिरपेक्ष राज्य और विचारधारा को स्थापित करना आधुनिक राष्ट्र राज्य की एक आवश्यकता बन गया था। उदाहरण के लिए बोदिन (Bodin) ने तर्क दिया :

''जब दो या अधिक धर्म पहले से मौजूद हों..... तो राज्य द्वारा धार्मिक एकरूपता लागू करने का प्रयास न केवल निरर्थक, बल्कि निरर्थक से भी बुरा साबित होता है। ऐसा करने का अर्थ होगा गृह युद्ध को जन्म देना और राज्य को कमजोर बनाना।

पश्चिम में धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना रातों–रात नहीं हो गई थी। ऐसा समाज में व्यापक रूप से मौजूद धर्मनिरपेक्ष सामाजिक भावना की अनिवार्य परिणति के रूप में हुआ था। वास्तव में, आधुनिक पश्चिमी जगत में धर्मनिरपेक्ष राज्य का

विकास, सभ्य समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रगति का परिचायक था। एक बड़ी सीमा तक राज्य का धर्मनिरपेक्षीकरण सभ्य समाज के धर्मनिरपेक्षीकरण के बाद हुआ। धर्मनिरपेक्षता की भावना उद्योग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, और अन्ततः बाजार क्षेत्र में मौजूद थी। बाजार–अर्थव्यवस्था के विनियमन के लिए धर्मनिरपेक्ष, कानून और राजनीति की जरूरत थी। तात्पर्य यह है कि आधुनिक पाश्चात्य राजनीति के इतिहास में, एक विचारधारा के रूप में धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया, वह प्रक्रिया थी जिसमें सभ्य समाज, राज्य, और इसकी समग्र संस्कृति के ढांचे में एक प्रगतिशील सामाजिक परिवर्तन निहित था। इस प्रक्रिया के तहत ही समाज और राजनीति में बहुलवाद (Pluralism) का उदय हुआ।

स्वातंत्र्योत्तर भारत के लिए ''धर्म निरपेक्षता का विकल्प'' (1947–1964)

भारतीय राष्ट्र निर्माण के सन्दर्भ में गांधी जी की प्रतिमा यह थी कि उन्होंने कांग्रेस सोपानिकी (Hierarchy) के अन्दर से अपने उत्तराधिकारी के रूप में सभी नेताओं (जैसेकि सरदार पटेल, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद आदि) के बीच में जवाहरलाल नेहरू को चुना। गांधी जी जानते थे कि जो चीज स्वयं वे राष्ट्र को नहीं दे पा रहे थे वह जवाहरलाल नेहरू दे सकते थे। गांधी जी, नेहरू की नेतृत्व क्षमता और भारत के भविष्य संवारने की उनकी संकल्पना से परिचित थे। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और इसकी वर्गकतारों (कांग्रेस के अन्दर अलग–अलग वर्गों के लोग) के ढाँचे के भीतर गांधी–नेहरू का संयुक्त नेतृत्व वस्तुतः एक दूसरे का पूरक था।

यह सच है कि जब भारत को आजादी मिली तब नेहरू के हाथों में नेतृत्व की बागडोर थी। लेकिन बहुत से मुद्दों पर वे कांग्रेस पार्टी, भारतीय राज्य और भारतीय समाज को भारतीय राज्य व्यवस्था के अपने आदर्श के अनुरूप मोड़ने में अक्षम थे। उदाहरण के लिए, धर्मनिरपेक्षता का ऐसा ही एक मसला था जिस पर वे अपने विचारों के अनुसार नहीं चल सके। धर्मनिरपेक्षता के जिस आदर्श की पैरवी वे शुरू से ही करते रहे थे, उसे क्रियान्वित करने के लिए वे पर्याप्त समर्थन नहीं जुटा सके। यानी वे धर्मनिरपेक्षता का ऐसा वैधिक संस्थात्मक ढांचा खड़ा नहीं कर सके जो राष्ट्र की राजनीति और उसके प्रशासन में धर्म के प्रयोग का निषेध कर पाता। नेहरू की असफलता के कारण बहुत स्पष्ट थे। यह असफलता उनकी निजी असफलता नहीं थी, बल्कि असफलता की वजहें, स्वयं राजनीति में बनी हुई थीं।

साम्प्रदायिकता की समस्या

इसके अलावा, भारत की आजादी और विभाजन से पहले और बाद में साम्प्रदायिक हिंसा का जो लावा फूटा उसने रूढ़िवादी संप्रदायवादियों की स्थिति को और भी मजबूत किया । यहाँ तक कि राष्ट्रपिता महात्मागांधी भी, जिन्होंने राजनीतिक संगठन के लिए लोकधर्म की वैधता को हमेशा सही ठहराया था, कट्टर रूढ़िवादी हिन्दू आक्रामकता की ताकत के सामने अकेले पड़ गए (और अन्ततः एक हिन्दू धर्मान्ध ने उनकी हत्या कर दी)। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने एक ऐसे राज्य की वकालत की जो केवल हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और हिन्दी भाषा को प्राथमिकता दे। उन्होंने जो नारा उछाला, वह था –'हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान'। व्यवहारवादी कट्टर हिन्दू भारत में उसी प्रकार का हिन्दू राष्ट्र चाहते थे जैसा कि पाकिस्तान में जिन्ना ने मुसलमानों को प्रदान किया था। इस तरह पाकिस्तान के भय ने भारत में लोकतांत्रिक धर्मनिरपेक्ष संस्थाओं के निर्माण में बाधा पहुँचाई क्योंकि पाकिस्तान का बनना हिन्दू साम्प्रदायिक आन्दोलन को हवा देने का कारण बना। कांग्रेस पार्टी के आन्तरिक और बाह्य हिन्दू साम्प्रदायिक दबावों के सामने गांधी जी और नेहरू दोनों का ही नेतृत्व अलग–अलग और कमजोर पड़ गया। पटेल तथा उनके जैसे अन्य नेताओं ने खुले आम प्रतिज्ञा की कि जब तक सोमनाथ मन्दिर की भव्यता को पुनः प्रतिष्ठित नहीं कर दिया जाता, वे चैन से नहीं बैठेंगे। इन नेताओं के प्रभुत्व के सामने नेहरू को आमूल परिवर्तनवादी धर्म–निरपेक्षतावाद के अपने आदर्श से पीछे लौटना पड़ा।

स्वतंत्रता को भारत के प्रत्येक नागरिक के मौलिक अधिकार के रूप में घोषित करने की आवश्यकता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सभी नागरिकों को ''सामाजिक प्रतिष्ठा और अवसर की समानता'' प्रदान करने का पवित्र संकल्प व्यक्त किया गया है। भारतीय संविधान में धार्मिक भेदभाव न बरतने का सिद्धांत विशेष रूप से शामिल है। यह सिद्धांत आम तौर पर लागू होता है, और सार्वजनिक रोजगार के क्षेत्र में विशेष रूप से उदाहरण के लिए, संविधान के अनुच्छेद 15 (i) में कहा गया है :

'राज्य धर्म, वंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर, या इनमें से किसी एक के आधार पर कोई भेदभाव नहीं बरतेगा।' अनुच्छेद 16 (i) में कहा गया हैः

'राज्य के अधीन किसी भी पद पर नियुक्ति या रोजगार पाने संबंधी मामलों में सभी नागरिकों को अवसर की समानता रहेगी।'

इसी प्रकार अनुच्छेद 25 (i) 'अन्तकरण (Conscience) की स्वतंत्रता और स्वतंत्र व्यवसाय और धर्मपालन की स्वतंत्रता.....की गारंटी देता है। लेकिन भारत में कानून, राजनीति से धर्म को अलग रखने का कोई प्रावधान प्रस्तुत नहीं करता। यही कारण है कि मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा जैसी साम्प्रदायिक पार्टियाँ राजनीति में सक्रिय रही हैं।

राज्य का दर्जा धर्म से ऊपर

हालांकि ध्यान देने योग्य बात यह है कि भारत में धर्म की तुलना में राज्य को सर्वोच्च स्थान मिला हुआ है। उदाहरण के लिए, भारतीय संविधान की प्रारूप समिति के अध्यक्ष स्वयं डॉ. अम्बेडकर जैसे व्यक्ति ने कहा था :'किसी भी समुदाय के लोगों को यह नहीं मान लेना चाहिए कि वे संसद की सार्वभौमिक अधिकार सीमा से बाहर हैं।' हालांकि भारतीय संविधान धार्मिक भेदभाव के किसी भी सिद्धांत के विरुद्ध बोलता है, परन्तु यह राज्य को दलित समुदाय (उदाहरण बतौर, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) के पक्ष में कानून बनाने से नहीं रोक सकता। यह विधि निर्माण 'सकारात्मक पक्षपात' के सिद्धांत पर आधारित है। यह धर्मनिरपेक्षता की वैज्ञानिक भावना के अनुरूप भी है। इसी कारण वी.पी. लूथरा भारतीय राज्य को 'न्याय प्रशासनवादी (Jurisdictionalist) के रूप में मानते हैं। उनके अनुसार भारतीय राज्य सभी धर्मों को समान दर्जा देता है, अन्तःकरण और उपासना की समान स्वतंत्रता प्रदान करता है, परन्तु धर्म के प्रति अपनी जिम्मेदारी से पूरी तरह विमुख नहीं होता। यह धर्मों की गतिविधियों पर सर्तक निगरानी रखता है, और जब जरूरी हो तब हस्तक्षेप भी कर सकता है। धर्मनिरपेक्षता का यह वैधिक संवैधानिक आदर्श नेहरू युग (1947–64) में कमोबेश संतोषप्रद ढंग से काम करता रहा। इस काल में भारत के विभिन्न धार्मिक समुदायों के सामने भारतीय राज्य की नीति 'धार्मिक तटस्थता' की बनी रही।

धर्म–निरपेक्षता का भारतीय आदर्श

इन परिस्थितियों के अन्तर्गत स्वतंत्र भारत के लिए धर्म–निरपेक्षता का जो आदर्श अपनाया गया उसे अधिक से अधिक एक समझौता कहा जा सकता है। यह समझौता कट्टर हिन्दू साम्प्रदायिकता और आमूल परिवर्तनवादी धर्म–निरपेक्षता के दो अतिवादी विपरीत ध्रुवों को टालकर किया जाना था। अतः विकल्प के रूप में केवल गांधीवादी आदर्श ही सामने था। इस तरह, स्वतंत्र भारत का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप उस गांधीवादी दर्शन के आधार पर ही तय किया गया जो रूढ़िवादी हिन्दू अखण्डता (Monopithioity) और धर्म को आरोपित किए जाने के विरुद्ध बहुलता को प्रश्रय देता था। हिन्दूवादी राज्य व्यवस्था अपनाकर अल्पसंख्यकों का तथाकथित रूप से भारतीयकरण करने का प्रस्ताव भी इस रूप में रद्द कर दिया गया। जवाहरलाल नेहरू और डॉ. भीमराव अम्बेडकर (जो नेहरू की धर्मनिरपेक्षता की संकल्पना से सहमति रखते थे) के प्रयासों से जो रणनीति तैयार हुई, वह 'धार्मिक तटस्थता' (या धर्मनिरपेक्षता) की थी। यह नीति 'धार्मिक बहुलवाद' से भिन्न थी क्योंकि धार्मिक बहुलवाद राजनीति में विभिन्न धार्मिक मूल्यों के अधिकाधिक प्रयोग का पोषक होता है, जब कि ''धार्मिक तटस्थता'' का मतलब है प्रत्यक्ष धार्मिक प्रचार और राजनीति तथा राज्य व्यवस्था में धर्म के प्रयोग से परहेज रखना ।

अपनी निजी हैसियत से नेहरू ने भारत में लोकतंत्र की संस्थां का विकास करने का भरसक प्रयास किया। 1947 से 1964 तक उन्होंने अनेक ऐसे कदम उठाए जो स्वतंत्र भारत को आधुनिकीकरण की ओर ले जाने वाले थे। वे अच्छी तरह जान गए थे कि अपनी अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज का आधुनिकीकरण किए बिना भारत एक आत्मनिर्भर देश नहीं बन सकता। इसलिए उन्होंने धर्मशास्त्र और धर्मतंत्रीय आदर्श को नकार कर विज्ञान और प्रौद्योगिकी को प्राथमिकता दी। उनके लिए पूजा, उपासना की पद्धतियों की तुलना में स्वास्थ्य और गरीबी के मसले कहीं अधिक वास्तविक महत्व के विषय थे। नेहरू का मानना था कि धार्मिकता भारत के हितों की पहले ही बहुत अधिक क्षति कर चुकी है। लेकिन विभाजन के बाद के राजनीतिक दबावों से उत्पन्न कठिन परिस्थितियों ने भारत में धर्मनिरपेक्षतावादियों की स्थिति को कमजोर बना दिया। नेहरू जानते थे कि पीछे लौटना अपरिहार्य हो गया था, जिसे टाला नहीं जा सकता था। इसलिए धर्म को आंशिक रूप से राज्य से अलग कर दिए जाने के बावजूद, इसे देश के सार्वजनिक राजनीतिक जीवन से अलग नहीं किया जा सका। यही कारण था कि भारत की राजनीतिक संस्कृति साम्प्रदायिक रंगों के खूनी रंग से रंगी रही। यहां साम्प्रदायिक समस्या का केन्द्र धर्म जरूर रहा, मगर एक आस्था के रूप में नहीं, बल्कि एक

राजनीतिक हथियार के रूप में धर्म के राजनीतिक वार के रूप में इस्तेमाल ने ही भारत में राष्ट्र–निर्माण और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बुरी तरह क्षति पहुंचाई।

राजनीति में धर्म की निरन्तरता एक बड़ी बाधा

देश के राजनीतिक जीवन से धर्म को अलग न कर पाना, स्वतंत्रता के बाद भारतीय धर्मनिरपेक्षता की एक बड़ी असफलता थी। धर्म को व्यक्ति के निजी जीवन तक सीमित रखने के लिए केवल वैधिक प्रावधान करके ही सही तौर पर धर्मनिरपेक्ष संस्था के निर्माण की कार्रवाई को भारत में आगे बढ़ाया जा सकता था। केवल वैधिक शुरुआत से ही आधुनिकीकरण और धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रिया गति पकड़ सकती थी। इसी आधार पर धर्मनिरपेक्ष सिद्धांतों और परम्पराओं का संस्थानीकरण देश के सामान्य सामाजिक जीवन और राजनीतिक संस्कृति को प्रभावित कर सकता था और आखिरकार इससे नागरिकों के निजी जीवन में भी धर्म का दखल कम हो सकता था। केवल तभी लोकधर्म के बजाय विज्ञान और बुद्धिजीवी शिक्षा के प्रसार से राष्ट्रनिर्माण किया जा सकता था।

जन विज्ञान (Popular Science) और तर्क के प्रभाव से ही नागरिकों की जीवन दृष्टि को पूर्णरूप से बदला जा सकता है। विज्ञान और तर्क से प्रकृति के कार्य व्यापार की व्याख्या करके प्रकृति और मूल शक्ति के उपयोग की कार्य विधि तैयार की जा सकती है। बीमारियों का उन्मूलन, साफ सुन्दर आवास, जीवन की आधारभूत आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन आदि सभी कुछ मौजूदा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल से संभव बनाया जा सकता है। यह धारणा कि आम तौर पर लोग विज्ञान और प्रौद्योगिकी के प्रयोग को समझने में सक्षम नहीं होते, वस्तुतः निहित स्वार्थ के लोगों द्वारा पैदा की गई है ताकि वे अपना नियंत्रण बनाये रख सकें। उनका यह नियंत्रण लोगों को विज्ञान से दूर हटाता है। अगर धर्मनिरपेक्षता यहां 'विज्ञान जनता के लिए', 'जानकारी जनता के लिए', 'विज्ञान आत्म–निर्भरता और राष्ट्रीय एकता के लिए' जैसा आंदोलन बन सकती तो साम्प्रदायिकता को इसके अपने गढ़ में ही पराजित किया जा सकता था। इस दिशा में प्रयत्न किए गए थे परन्तु भारतीय धर्मनिरपेक्षता की दिशा विज्ञान और तर्क से हटकर सभी धर्मों के सद्भाव की ओर मुड़ गई और इससे इसके सकारात्मक विकास का आधार ही डगमगा गया। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि स्वातर्त्योत्तर काल की 'धर्मनिरपेक्षता' का मौजूदा स्वरूप वास्तविक धर्मनिरपेक्षता की ओर ही बढ़ा हुआ एक कदम है।

भारतीय धर्मनिरपेक्षता का वैधिक आधार

डॉ. ई. स्मिथ के अनुसार, धर्मनिरपेक्ष राज्य, ''वह राज्य है जो धर्म को निजी और सामूहिक स्वतंत्रता प्रदान करता है, एक व्यक्ति को बिना उसके धर्म–सम्बन्ध पर विचार किए नागरिक मानता है, जो संवैधानिक रूप से किसी धर्म विशेष से बंधा नहीं होता, और न किसी धर्म को प्रोत्साहित करता है, न किसी धर्म को बाधित करता है।''

आगे उसका कहना था :

''धर्म निरपेक्ष राज्य एक व्यक्ति को किसी विशेष धर्म समूह का सदस्य मानने के बजाय एक नागरिक मानता है। नागरिकता की शर्तों की परिभाषा में धर्म का कोई स्थान नहीं होता और एक नागरिक के अधिकार और कर्त्तव्य उसके धार्मिक विश्वास से प्रभावित नहीं होते।''

राज्य की इस प्रकार की नीति का एक तार्किक परिणाम यह होता है कि सार्वजनिक पद या किसी सरकारी सेवा में नियुक्ति पाना किसी व्यक्ति के धर्म पर निर्भर नहीं करता। स्मिथ ने भारतीय संविधान की कई धाराओं के आधार पर यह सिद्ध किया कि भारत पश्चिम की उदारतावादी लोकतांत्रिक परम्परा जैसा ही धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

सन्दर्भ सूची

"धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा". मूल से 21 सितंबर 2007 को पुरालेखित. अभिगमन तिथि 11 अगस्त 2007.

थ्मसकउंद, छवी (2005). क्पअपकमक इल ळवक. थ्ंततंत,ैजतंने ंदक ळपतवन•, चह. 113